नियमसार, गाथा १३७।

रायादी-परिहारे अप्पाणं जो दु जुंजदे साहू।
सो जोगभत्तिजुत्तो इदरस्स य किह हवे जोगो।।१३७।।

रागादि के परिहार में जो साधु जोड़े आतमा।
है योग की भक्ति उसे, नहिं अन्य को सम्भावना॥१३७॥

टीका : आहाहा! **यह निश्चययोगभक्ति के स्वरूप का कथन है।** भगवान की भक्ति आदि, वह तो शुभराग है। निश्चयभक्ति अपनी। अपने शुद्ध स्वरूप में एकाग्र होना; शुद्ध में शुद्ध उपयोगरूप से एकाकार होना, इसका नाम निश्चयभक्ति है। आहाहा! और वह शुद्ध भक्ति निर्वाण का कारण है। व्यवहार जो भगवान की भक्ति, वह तो बन्ध का कारण है। व्यवहार अभूतार्थ कहा है। वह बन्ध का कारण है। यहाँ कहा कि **निश्चययोगभक्ति के स्वरूप का कथन है।** निश्चययोगभक्ति किसे कहना?

निरवशेषरूप से... आहाहा! देखो! कुछ भी बाह्य से विकल्पादि कुछ भी बाकी

रखे बिना, सबको छोड़कर निरवशेषरूप से-कुछ भी बाकी रखे बिना। गुण-गुणी का भेद, ऐसा विकल्प भी छोड़कर। आहाहा! **निरवशेषरूप से अन्तर्मुखाकार...** अन्तर्मुखस्वरूप परमपारिणामिक स्वभावभाव, ज्ञायकभाव, वह अन्तर्मुखाकार। आहाहा! **निरवशेषरूप से अन्तर्मुखाकार...** कुछ भी बाहर का रखे बिना अन्तर्मुखाकार। व्यवहार के विकल्प से तो नहीं, परन्तु गुण-गुणी के भेद के विकल्प से भी नहीं। आहाहा!

ऐसे **निरवशेषरूप से अन्तर्मुखाकार (-सर्वथा अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है ऐसी)...** अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है। सहजानन्द प्रभु, सहजस्वरूप, सहज सत्ता की ओर का अन्तर्मुख झुकाव है। वह अन्तर्मुख आकार है अर्थात् अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। व्यवहाररत्नत्रय तो विकल्प-राग है। आहाहा! अन्तर्मुख परमपारिणामिक स्वभावभाव ज्ञायकभाव। अन्तर्मुखाकार अर्थात् अन्तर्मुखस्वरूप। अन्तर्मुखस्वरूप। विकल्पादि हैं, वे तो बहिर्स्वरूप हैं। अरे! पर्याय भी बहिर्स्वरूप है। समझ में आया? अन्तर्मुख आकार तो अकेला द्रव्यस्वभाव, चैतन्य आनन्दस्वरूप जो, उसके अन्तर्मुख स्वरूप।

(-सर्वथा अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है ऐसी) परम समाधि द्वारा... आहाहा! परम शान्ति द्वारा परम समाधि। यह बाबा की समाधि नहीं। यह तो अन्तर आनन्द और ज्ञान अन्तर्मुख प्रभुता आदि अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, आहाहा! उसकी एकाग्रता, वह परम समाधि। निर्विकल्प आनन्द का अनुभव, वह परम समाधि। यह है, लो! विरुद्ध करते हैं, इसे विरुद्ध करते हैं ऐसा कहते हैं कि अनर्थ किया है। अर्थ का अनर्थ किया है। कहे उसका नाम लिखा। परन्तु... आहाहा! अरे! प्रभु! व्यवहार है, वह पराश्रय है। निश्चय है, वह स्वाश्रय है। दो महासिद्धान्त है। और जो स्वाश्रय है निश्चय, उतना ही मोक्षमार्ग है। जितना पराश्रय राग है, वह बन्ध का कारण है। उसे मोक्षमार्ग व्यवहार से कहा, परन्तु है बन्ध का कारण। आहाहा! कठिन काम। अब इसमें लोहे से कब निवृत्त होना? बाहर से तो सब निवृत्त हुआ ही है, कहते हैं। निवृत्त है। बाहर का ग्रहण-त्याग उसमें है नहीं। मात्र अन्तर में विकल्प और बहिर्मुखी पर्याय जो है, उसे अन्तर्मुखाकार करना। आहाहा! जो पर्याय है... वस्तु दोरूप : द्रव्य और पर्याय। अब वह पर्याय बहिर्मुख है, उसे अन्तर्मुखाकार अर्थात् चैतन्यस्वरूप के स्वरूप उसका परिणमन करना। आहाहा! इसका नाम समाधि, योग, धर्म, मोक्ष का मार्ग जो कहो, वह है। आहाहा!

ऐसी **परम समाधि द्वारा समस्त मोहरागद्वेषादि परभावों का परिहार होने पर,...** लो! समस्त मोह-राग-द्वेष। व्यवहार का विकल्प तो नहीं, परन्तु गुण-गुणी के भेद का विकल्प भी नहीं। आहाहा! **समस्त...** पूरी रीति से **मोहरागद्वेषादि परभावों का परिहार...** व्यवहाररत्नत्रय का परिहार आया या नहीं? व्यवहाररत्नत्रय राग है। आहाहा! शुभराग है, शुभोयोग है। **समस्त...** परसन्मुख की एकताबुद्धि और परसन्मुख के झुकाववाला भाव—मोह, राग-द्वेष से, ऐसे जो परभाव मोह और राग-द्वेष, मिथ्यात्व और पुण्य-पाप—ऐसे जो भाव, उनका परिहार होने पर, उन परभावों का परिहार होने पर। आहाहा! उन परभावों में अधर्म है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय भी अधर्म है। उसे साधन मनवाना है। अरे रे! क्या हो? एक ओर वापस ऐसा कहे कि भव्य हूँ या नहीं, भगवान जाने। अर र! अभी तो सम्यग्दर्शन क्या, वह तो नहीं, परन्तु भव्य हूँ—यह अभी निर्णय नहीं। अखबार में आया है। आहाहा! यह ऐसे अर्थ करे। दुनिया पागल ऐसे की ऐसे चली। आहाहा!

भगवान! यहाँ तो नियम, निश्चय जो नियम योग, उसे परम समाधि कहो, परभाव का परिहार कहो... आहाहा! ऐसा **परिहार होने पर, जो साधु—आसन्नभव्य जीव—** जिसे अब मुक्ति निकट है। आहाहा! मुक्ति जिसकी राह देखती है। आहाहा! अल्प काल में उसे मुक्त होना है—ऐसे आसन्न भव्य द्वारा, ऐसे आसन्न भव्य जीव... आहाहा! **निज अखण्ड अद्वैत...** आहाहा! निज अर्थात् अपना स्वरूप भगवान, वह कैसा? कि अखण्ड। आहाहा! जिसमें गुण-गुणी का खण्ड नहीं और द्रव्य-पर्याय का द्वैत नहीं (-ऐसा) अद्वैत। आहाहा! ऐसी स्थिति को सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा!

आसन्नभव्य जीव—निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप के साथ... आहाहा! अतीन्द्रिय परमानन्द का प्रगट रस आवे। जो शक्ति और स्वभावरूप परमानन्द है, उस परमानन्द की शक्ति में से व्यक्तरूप प्रगट अवस्था (हो), **परमानन्दस्वरूप के साथ निज कारणपरमात्मा को...** आहाहा! परमानन्द को निज कारणपरमात्मा के साथ जोड़ दे। निज परमानन्ददशा को निज कारणस्वभाव के साथ जोड़े। आहाहा! ऐसी भाषा भी कहीं सुनी नहीं होगी। शान्तिभाई! सर्वत्र दिये रखा है आड़ा-टेड़ा। जो मिला हो, वह कहे। बैठा हो। दूसरा क्या हो?

मुमुक्षु :- .....

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहाहा! यह मार्ग कोई अलग है, बापू!

अद्वैत, अखण्ड प्रभु, कुछ गुण-गुणी का भेद तो नहीं, परन्तु द्रव्य और पर्याय जिसके दो भेद भी लक्ष्य में नहीं। आहाहा! ऐसा जो **अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप के साथ...** आहाहा! अखण्ड, निज अखण्ड, हों! अद्वैत **परमानन्दस्वरूप के साथ...** परमानन्दस्वरूप तो पर्याय है। निज कारणपरमात्मा द्रव्य है। आहाहा! निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप, वह पर्याय है। उस पर्याय को निज कारणपरमात्मा को **जोड़ता है...** वह पर्याय निज कारणपरमात्मा त्रिकाल भगवान, वर्तमान निर्मल आनन्द की पर्याय त्रिकाल के साथ जोड़ता है। आहाहा! उसका नाम योगभक्ति, उसका नाम भक्ति अर्थात् समाधि। आहाहा! भाषा ही कठिन पड़ती है। भाषा कभी सुनी न हो। ऐसा मार्ग है। आहाहा!

निज अखण्ड अद्वैत... आहाहा! एकरूप परमानन्दस्वरूपदशा। विकल्प की-व्यवहार की तो कहीं गन्ध भी नहीं। ऐसे परमानन्दस्वरूप को अर्थात् वर्तमानदशा को त्रिकाल के साथ जोड़ दे। आहाहा! निज अखण्ड एक अद्वैत परमानन्दस्वरूप ऐसी जो वर्तमान दशा, उसे त्रिकाल कारणपरमात्मा ध्रुवस्वरूप, कारणपरमात्मा—निज कारणपरमात्मा... आहाहा! उसके साथ जोड़ता है। आहाहा! गजब बात है। ऐसा मार्ग लोगों ने कुछ का कुछ कर डाला है। सत्य को एक ओर रख दिया और असत्य को सत्य सिद्ध कर दिया। आहाहा!

यहाँ तो दो बातें ली हैं। तू परमानन्दस्वरूप है, कारणसमयसार त्रिकाल। उसमें से परमानन्दस्वरूप प्रगट करके कारणसमयसार जो त्रिकाल, उसके साथ जोड़ दे। आहाहा! **वह परम तपोधन ही...** वह परमतपोधन ही **शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है;...** आहाहा! उसमें शुभयोग नहीं, व्यवहाररत्नत्रय नहीं। आहाहा! अब ऐसा कब करने जाए? निवृत्त कहाँ से हो? आहा! अभी यह सुनने को मिले नहीं। इसके ज्ञान में बात आवे नहीं। लोग नहीं कहते?—कि मेरी बात ध्यान में तो ले। ऐसा नहीं कहते? मेरी बात तेरे ध्यान में तो ले। ऐसा कहते हैं। इसी तरह यहाँ परमात्मा कहते हैं कि हम कहते हैं, उसे ध्यान में तो ले। आहाहा! देवीलालजी! कहते हैं या नहीं? हम कहते हैं, उसे ध्यान में तो ले। फिर तुझे जँचे, न जँचे, वह अलग, परन्तु यह क्या कहना चाहते हैं, उसे तू ध्यान में तो ले। आहाहा! इसी तरह यह परमानन्दस्वरूप भगवान आत्मा, उसे परमानन्द की परिणति के साथ जोड़

दे। आहाहा! यह कारणसमयसार कहो या परमानन्द की मूर्ति ध्रुव नित्य कहो। अतीन्द्रिय परमानन्द का दल, अतीन्द्रिय परमानन्द का स्वभाव का सागर, उसे-वर्तमान पर्याय परमानन्द की, परम परमानन्द की पर्याय को वहाँ जोड़ दे। आहाहा!

मुमुक्षु :- उसमें पर्याय के साथ जोड़ना...

पूज्य गुरुदेवश्री :- काम पर्याय करती है न! ध्रुव में कहाँ (करना है) ? ध्रुव में तो लक्ष्य है। कार्य तो यहाँ पर्याय में होता है। आहाहा!

मुमुक्षु :- पर्याय को द्रव्य में जोड़ना या द्रव्य को पर्याय में जोड़ना ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- पर्याय का द्रव्य में जुड़ान।

मुमुक्षु :- इसमें तो ऐसा लिखा है कि परमात्मा के साथ जोड़कर।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहा। कारणपरमात्मा द्रव्य को।

मुमुक्षु :- परमात्मा के साथ पर्याय पर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री :- अर्थात् कारणपरमात्मा में जोड़ - ऐसा कहा न! त्रिकाल को पर्याय जोड़ दे। यह तो कहा पहले से। परमानन्दस्वरूप के साथ यह पर्याय है। निज कारणपरमात्मा द्रव्य, वह द्रव्य है। आहाहा! दोनों अर्थ पहले से किये हैं।

निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप के साथ निज कारणपरमात्मा को युक्त करता है,... आहाहा! बात तो यह है कि निर्विकल्प हो, ऐसा। किसी भी प्रकार का विकल्प छोड़ दे। यह भगवान स्वयं निर्विकल्पस्वरूप है, परमानन्दस्वरूप है, निर्विकल्पस्वरूप है, वीतरागस्वरूप है। ऐसे कारणपरमात्मा को... आहाहा! वर्तमान निर्मलदशा को परमानन्दस्वरूप के साथ निजकारण को जोड़ दे। साथ जोड़ दे अर्थात् कहीं ध्रुव जोड़ता नहीं। जोड़ती है तो पर्याय। आहाहा! ध्रुव तो ध्रुव है, कारणसमयसार एकरूप त्रिकाल। आहाहा! वर्तमान आर्तध्यान और रौद्रध्यान और विकल्प है, उसकी दशा, उसकी दशा पर दिशा के ऊपर है। उसकी दशा पर दिशा के ऊपर है। अब यह परमानन्द की दशा, उसे स्व दिशा के ऊपर कर।

परमानन्दस्वरूप के साथ निज कारणपरमात्मा को युक्त करता है,... अर्थात् कहीं ध्रुव को पर्याय के साथ जोड़ना है ? इसका अर्थ यह... आहाहा! वर्तमान पर्याय को परमानन्द कारणसमयसार के साथ जोड़ दे। आहाहा! ध्रुव है, वह तो ध्रुव ही है। ध्रुव में

कुछ पलटना, बदलना, अनेकरूपता उसमें है नहीं। वह ध्रुव तो एकरूप ही है। उसमें यह अनेकरूप निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप है, उसके साथ जोड़ दे। आहा!

मुमुक्षु :- साथ और द्वारा तीसरी विभक्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह आत्मा की भक्ति है। आहाहा! सिद्ध की भक्ति तो व्यवहार है, विकल्प है। आहाहा!

शब्द कैसा है? **निज अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप के साथ निज कारणपरमात्मा को युक्त करता है,...** ध्रुव को जोड़ दे। भाषा क्या हो? ध्रुव को जोड़ दे तू। ध्रुव तो ध्रुव त्रिकाल आनन्द का नाथ सागर पड़ा है। एकरूप त्रिकाल पड़ा है। चाहे जितनी पर्याय में विकृति हो (तो भी) वस्तु तो एकरूप त्रिकाल निरावरण एकरूप रही है। आहाहा! उसे वर्तमान पर्याय के साथ जोड़ दे। जो पर्याय का जुड़ान राग और द्वेष तथा विकार और भेद पर है, खण्ड और भेद तथा विकल्प पर है, उसे अखण्ड ऐसा चैतन्य जो परमानन्दस्वरूप है, उसे कारणपरमात्मा के साथ जोड़ दे। आहाहा! यह तो मानो पर्याय के साथ द्रव्य को जोड़ दे।—इसका अर्थ यह हुआ न? आहाहा! पर्याय के साथ द्रव्य को जोड़ दे, इसका यह अर्थ हुआ। पर्याय को द्रव्य के साथ जोड़ दे। आहाहा! द्रव्य को कहाँ जोड़ना है? द्रव्य तो ध्रुव है। आहाहा! वह तो कारणसमयसार है।

अरे रे! सत्य बाहर आवे, उसका विरोध करे। बापू! यह तो सत्य है। महँगा लगे, कठिन लगे, समझने में कठिन पड़े.. परन्तु वस्तु तो यह है। यह रास्ता लिये बिना जन्म-मरण का अन्त आवे - ऐसा नहीं है, भाई! चौरासी के अवतार... आहाहा! यहाँ बनिया अरबोंपति होवे, (और मरकर) शूकरी के गर्भ में जाए! अर र! ऐसे अवतार किये! वह शूकर पूरी जिन्दगी विष्ठा खाये। यहाँ विष्ठा को स्पर्श भी नहीं करता था। वह शूकर विष्ठा ही खाये। आहाहा! ऐसे अवतार अनन्तबार किये हैं। आहाहा! दरकार नहीं की। मैं कौन और क्या होता है? और क्या होता है, इसका फल क्या आयेगा? आहाहा! जो मैं कर रहा हूँ, उसका फल क्या आयेगा? और कर रहा हूँ, वह चीज़ क्या है? उसे जानने की भी दरकार नहीं करता। आहाहा! यह ऐसा कहते हैं। इसलिए परमानन्द के साथ जीव को जोड़ दे। आहाहा! द्रव्य को परमानन्द के साथ जोड़ दे। आहाहा!

अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप के साथ निज कारणपरमात्मा को युक्त करता

है, वह परम तपोधन ही... वह परम तपोधन ही। वह ही। वह एक ही। **शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है;...** आहाहा! उसे ही, तपोधन ही। एकान्त किया है। वह मुनि स्वयं अकेला... आहाहा! **शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है;...** शुद्धनिश्चय उपयोगभक्ति है पर्याय। इस शुद्धनिश्चयभक्तिवाला वह है। आहाहा! अब उसमें व्यवहार की टीका की। ऐसा कि व्यवहार का अर्थ अनर्थ किया है। व्यवहार का अर्थ तो मिथ्यात्व ही है। निश्चय से विरुद्ध व्यवहार, मिथ्यात्व ही है। परन्तु निश्चय से विरुद्ध व्यवहार विरुद्ध नहीं? व्यवहार अभूतार्थ है और निश्चय भूतार्थ है। दोनों विरुद्ध हैं। आहाहा! उसे लोग मिले रहते हैं। बनिये को धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं होती। घण्टा भर मिले तो उसमें ऊपर जो कहे - जय नारायण। आहाहा!

वह **ही शुद्धनिश्चय-उपयोग...** निश्चय शुद्ध उपयोग। देखा? और शुद्ध उपयोग न कहकर शुद्ध निश्चय उपयोग (कहा है)। आहाहा! शुभयोग तो नहीं, परन्तु अकेला शुद्ध भी नहीं। आहाहा! **शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है;...** आहाहा! इन्हें शब्द मिलते नहीं। इन्हें कहना, भगवान अन्दर वह हीरा की खान है। वह चैतन्य रत्न की खान भरी है। आहाहा! जिसमें अकेले आत्मा के रत्न भरे हैं। वह तो चैतन्यरत्नाकर समुद्र है। उसे वर्तमान परमानन्ददशा प्रगट करके उसके साथ जोड़ दे। आहाहा!

उसे—उस तपोधन को ही। **शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है;...** आहाहा! अनजाने व्यक्ति को तो और यह शुद्ध निश्चय उपयोग क्या? आहाहा! अरे रे! ऐसी जिन्दगी निकाली। बाहर में कमाने में होशियार। मानता है होशियार। वह तो पूर्व का पुण्य होवे तो आवे। और आवे-जावे, उसे तो यह (आत्मा) स्पर्श भी नहीं करता। यह मानता है कि मैं इसे लाया और लिया। यह व्यवस्था मैंने की। आहाहा! उस चीज़ को तो यह स्पर्श ही नहीं करता, स्पर्श ही नहीं किया; तो भी पूरे दिन मानता है कि मानो यह सब काम मैं करता हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु :- आप कहते हो स्पर्श नहीं करता। वह कहता है हम सँभालकर रखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- स्पर्श नहीं करता, उसे सँभालकर रखा, यह किस प्रकार होगा? बापू!

एक तत्त्व और दूसरे तत्त्व के बीच अत्यन्त-अभाव है। अत्यन्त अभाव की दीवार

बीच में पड़ी है। वज्र की दीवार। आहाहा! एक तत्त्व और दूसरे तत्त्व के बीच अत्यन्त (अभावरूप) वज्र की दीवार पड़ी है। स्पर्श नहीं करता। कैसे जँचे? समयसार की तीसरी गाथा। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को चुम्बन नहीं करता। आहाहा! यह समयसार पुकार करके (कहता है)। कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं)। एक द्रव्य अपने गुणस्वभाव को स्पर्श करता है, परन्तु वह द्रव्य दूसरे को छूता या स्पर्शता नहीं है। और तू स्पर्श मानता है, वह तुझे अज्ञान और भ्रम है। आहाहा! ऐसी बात है।

इसकी तो लगन लगनी चाहिए। इसके पीछे पड़ना चाहिए, तब इसका पता लगता है। आहाहा! ऐसे ऊपर-ऊपर से आकर सुनकर किया और यह और यह और यह। उसमें इसका पता मिले - ऐसा नहीं है। बापू! आहाहा! ऐसे तो अनन्त बार ग्यारह अंग को धारण की, नव पूर्व की लब्धि प्रगट की। नव पूर्व पढ़ने से नहीं पढ़े जाते। क्या कहा यह? ग्यारह अंग तो अभी पढ़ने से पढ़े जाते हैं, नव पूर्व पढ़ने से नहीं पढ़े जाते, वह तो लब्धि प्रगट होती है। आहाहा! वह नव पूर्व की लब्धि अनन्त बार प्रगट हुई। आहाहा! परन्तु मिथ्यादृष्टि कोरा का कोरा रहा। आहाहा!

यह चीज़ जो है, वह परम आनन्द का धाम... आहाहा! वह क्षेत्र ही ऐसा है, प्रभु का क्षेत्र ही ऐसा है कि जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का पाक होता है। दुःख का पाक हो — ऐसा आत्मा नहीं है। वह आत्मा नहीं है। आहाहा! परमानन्द की उत्पत्ति क्षेत्र वह स्वयं भगवान आत्मा है। आहाहा! उसके अन्दर जा न, कहते हैं। ऐसा कहा है। परमानन्द के साथ जोड़ - इसका अर्थ यह। जहाँ भगवान पूर्णानन्द पड़ा है, (वहाँ जा)। आहाहा! यह कभी सुना नहीं, नजर भी नहीं की। और जिसकी नजर है, उसे नजर में नहीं किया। जिसकी नजर है, वह दूसरी चीज़ को नजर में किया। जो इसकी नजर में चीज़ नहीं, उसकी नजर की, परन्तु जिसकी नजर है, उसकी नजर नहीं की। आहाहा! नये (लोगों) को तो कठिन लगता है। शान्तिभाई! यह ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा! एकदम जन्म-मरण रहित (होने की बात है)।

चौरासी के अवतार अनन्त काल, अनन्त-अनन्त भव कर-करके कचूमर निकल गया है। आहाहा! आचार्य कहते हैं कि.. आहाहा! मैं भूतकाल के दुःखों को स्मरण करता हूँ, वहाँ चोट पड़ती है। आता है न? आहाहा! भूतकाल के भवों के अनन्त भवों को स्मरण

करता हूँ... आचार्य कहते हैं कि, वहाँ अन्दर चोट पड़ती है। है आनन्द का नाथ, अन्दर आनन्द प्रगट हुआ है... आहाहा! आनन्द का अनुभव है, परन्तु कहते हैं कि मैं भूतकाल को जहाँ याद करता हूँ, अनन्त-अनन्त भवों में क्या हुआ?—यह जहाँ याद करता हूँ, वहाँ अन्दर चोट पड़ती है। आहाहा! इसे अभी भूतकाल क्या था, यह इसे विचार करने का समय नहीं मिलता। आहाहा! आत्मा कौन है और कैसे है?—यह तो एक ओर रहा। आहाहा! परन्तु अनन्त काल में अभी तक कहाँ रहा? भाई! भव.. भव.. भव.. भव... भव.. भव.. भव.. भव.. भव.. कहीं भव का अन्त नहीं। ऐसे अनन्त-अनन्त भवों में अनन्त दुःख सहन करके मर गया है, भाई! आहाहा! आचार्य ऐसा कहते हैं, हों! आहाहा! आचार्य कहते हैं। आहाहा! अरे रे! मैं दुःख को याद करता हूँ, भूतकाल के दुःख के भव को... आहाहा! याद करते हैं, वहाँ, चोट लगती है। अरे रे! ऐसी स्थिति व्यतीत हो गयी? अब वह बीती न आवे, वह स्थिति; इसलिए याद करते हैं। आहाहा! परन्तु इस भव पहले कौन और उस भव पहले कौन और ये अनन्त-अनन्त हुए।

एक निगोद के अन्तर्मुहूर्त में लहसुन और प्याज में अन्तर्मुहूर्त दो घड़ी में—अड़तालीस मिनिट में ६६,३३६ भव किये। अरे रे! यह क्या दशा थी? भाई! आहाहा! एक सैकेण्ड में कितनी बार मरे और उपजे, जन्मे और मरे। ऐसे अन्तर्मुहूर्त में ६६ हजार... आहाहा! निगोद के भव में रहा। ऐसा एक बार नहीं, ऐसा अनन्त बार। आहाहा! आदि कहीं है? आहाहा! वीतराग मार्ग में तो जो है, वह अनन्त.. अनन्त.. अनन्त की बात है। आहाहा! भूतकाल में अन्तर्मुहूर्त में ऐसे भव किये ६६ हजार। ऐसे अनन्त बार किये। आहाहा! प्रभु! अब तुझे तेरा अवसर आया न! आहाहा! यह भव तो भवरहित होने के लिये भव है। यह भव, भव होने के लिये भव नहीं है। आहाहा! वाह!

शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है;... वही तपोधन, वही तपोधन, वह मुनि। आहाहा! वह पंच महाव्रत पालन करे, समिति, गुप्ति और देखकर चले; उसके लिये बनाया हुआ आहार न ले। अभी तो उसके लिये बनाया हुआ आहार भी लिया जाता है। आहाहा! उसके लिये बनाया हुआ आहार प्राण जाए तो भी न ले। हमारे गुरु थे, वे उनके लिये बनाया हुआ आहार-पानी नहीं लेते थे। भले थे स्थानकवासी। परन्तु बिल्कुल (लेते) नहीं। छह-छह कोस विहार किया हो, आहार लेने जाएँ, वहाँ पानी मिले नहीं। फिर काठी में और

वहाँ जाकर छाछ ले आवे। छाछ और रोटी खावे। परन्तु यह सब क्रियाकाण्ड है। यह कहीं वस्तु नहीं है। आहाहा! और मानते थे ऐसा। स्वयं तो नरम सज्जन थे। मूलचन्दजी थे, थोड़े अभिमानी। वे ऐसा कहते थे कि अपन साधु नहीं हों और दूसरे साधू होंगे कौन अभी इस दुनिया में? अपन ऐसा पालन करते हैं, ऐसा रात्रि में बोले। अरे रे! भगवान! हम साधु नहीं तो फिर जगत में साधु है कौन? आहाहा! अरे रे! साधु किसे कहना, समकिती किसे कहना... आहाहा! मिथ्यात्वी किसे कहना? अनन्त भव में भ्रमता जीव, भटकना छोड़ेगा नहीं, उसे किसे कहना? और भटकना छोड़े, वह किसे कहना? आहाहा! यह यहाँ कहते हैं, देखो!

वह **शुद्धनिश्चय-उपयोगभक्तिवाला है; दूसरे को—बाह्य प्रपंच में सुखी हो उसे—**देखो! दूसरा कोई जीव नहीं। व्यवहार में सुखी हो और व्यवहार करता हो, उसमें प्रसन्न हो, आहाहा! **दूसरे को—बाह्य प्रपंच...** बाह्य की क्रिया के प्रपंच में भले पड़ा हो। महीने-महीने के अपवास, छह-छह महीने के अपवास। आहाहा! अपवास के पारणे में भी रस न ले, रूखा आहार-रोटियाँ ले। वह तो सब बाहर का प्रपंच है। आहाहा! **दूसरे को—बाह्य प्रपंच में सुखी हो उसे—योगभक्ति किसप्रकार हो सकती है?** बाहय में सुखी होवे अर्थात्? आत्मा के अतिरिक्त कुछ भी ठीक है—ऐसा माननेवाला सब में। व्यवहार में, निमित्त में, संयोग में कुछ भी विस्मयरूप से, आश्रयरूप से, अधिकतारूप से (मानता हो)। आहाहा! भगवान **णाणसहावाधियं मुणदि आदं** (समयसार) ३१ गाथा में (कहा है)। उस ज्ञानस्वभाव को अधिक, सब चीजों से भिन्न, अधिक और पूरा। अधिक, भिन्न और पूरा। भिन्न का अर्थ उसमें-टीका में किया है। अधिक का अर्थ भिन्न किया है, भाई! आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावी प्रभु, अन्य रागादि से और अन्य भाव से अत्यन्त भिन्न तथा पूर्ण और अधिक है। आहाहा! इसके अतिरिक्त दूसरे प्रपंच में पड़े, उन्हें हम मानते नहीं - ऐसा कहते हैं। कहा न?

दूसरे को—बाह्य प्रपंच में सुखी हो... वह माने व्यवहार करके अपने को ठीक पड़ता है, हम दूसरे से कुछ अच्छा करते हैं। आहाहा! स्त्री-पुत्र छोड़े, परिवार छोड़ा, धन्धा छोड़ा, व्यापार छोड़ा। क्या छोड़ा? यह तो तुझमें था नहीं, और छोड़ा कहाँ से आया? आहाहा! मिथ्यात्व और राग है, उसे छोड़ना कहना, यह व्यवहार है। आहाहा! क्योंकि वह

वस्तु में नहीं है। वस्तु की दृष्टि होने पर वह नहीं होता। आहाहा! ऐसे **बाह्य प्रपंच में सुखी हो उसे—योगभक्ति किसप्रकार हो सकती है ?** आहाहा! आत्मा के अतिरिक्त विकल्प से लेकर किसी भी चीज़ में ठीक है - ऐसा माननेवाले सुख मानते हैं। उसमें सुख मानते हैं। कुछ ठीक है, मजा है, अभी अनुकूलता है—ऐसा माननेवाले बाहर में सुखी है, ऐसा मानते हैं। मूढ़ हैं। उन्हें ये भक्ति नहीं होती। आहाहा!

इसी प्रकार (अन्यत्र श्लोक द्वारा) कहा है कि:— आधार देते हैं।

आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।
तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **आत्मप्रयत्नसापेक्ष...** आत्मप्रयत्नसापेक्ष। पर प्रयत्न के प्रति सापेक्ष नहीं। जिसका प्रयत्न आत्मा के प्रति सापेक्ष है। आहाहा! ऐसा **विशिष्ट...** खास। आत्मप्रयत्नसापेक्ष, ऐसा खास **जो मनोगति...** मन का उसका झुकाव.. आहाहा! **उसका ब्रह्म में संयोग...** उसका ब्रह्म, ब्रह्म। उस आनन्द में संयोग। आहाहा! ऐसा उपदेश अब कभी सुना भी न हो। यह तो जैन में होगा? जैन में तो छह काय की दया पालना, व्रत पालना, छह परबी रात्रिभोजन न करना, छह परबी ब्रह्मचर्य पालना, छह परबी कन्दमूल न खाना। अरे! बापू! ऐसी क्रियाएँ तो अनन्त बार की, भाई! वह कोई तेरी चीज़ नहीं है। पर का त्याग और ग्रहण वस्तु में नहीं है। आहाहा!

यह कहते हैं, मनोगति को आत्मप्रयत्नसापेक्ष खास मनोगति को। आहाहा! खास अर्थात् शुभ-अशुभ नहीं। आत्मप्रयत्नसापेक्ष खास मनोगति उसका, उस मनोगति को, उसका ब्रह्म में संयोग। आहाहा! यहाँ आया। ब्रह्म में संयोग। ध्रुव में संयोग करना है न? ध्रुव को कहाँ पर्याय का संयोग करना है? आहाहा! समझ में आया इसमें? ध्रुव को पर्याय का संयोग नहीं करना। पर्याय को ध्रुव का संयोग करना है। पर्याय ने विरह किया है। धर्म का पर्याय ने विरह किया है। उस पर्याय को यहाँ जोड़ना। आहाहा! अनजान व्यक्ति को ऐसा लगे कि यह तो क्या कहते हैं?

मुमुक्षु :- समयसार में आता है कि आत्मा को मोक्षमार्ग में स्थाप।

पूज्य गुरुदेवश्री :- उसका अर्थ उस पर्याय में स्थाप। पर्याय राग में है, उसे छोड़कर पर्याय में स्थाप-निर्मल पर्याय में स्थाप। इसका अर्थ निर्मल पर्याय द्रव्य के ऊपर

कर। राग पर्याय छोड़ दे। वह तो ध्रुव चीज़ है। ध्रुव में स्थापन होता है, परन्तु ध्रुव को स्थापन किया जाता है ? आहाहा! ऐसा है।

ऐसा जैनमार्ग वीतराग केवलज्ञानी परमात्मा अनन्त केवली ऐसा कह गये हैं, भाई! संसार का अभाव कर गये है। आहाहा! अनन्त भव में जैसे भटका है.. आहाहा! ऐसे.. आहाहा! अनन्त सिद्ध भी हो गये हैं। आत्मा का जुड़ान करके अनन्त सिद्ध हो गये। आहाहा! अनन्त काल से भी सिद्ध भगवान ज्यादा हैं। भूतकाल जो अनन्त काल है, उससे सिद्धभगवान अधिक हैं, क्योंकि छह महीने आठ समय में ६०८ मुक्ति होते है। भूतकाल के समय जितने गये.. आहाहा! उस भूतकाल के दुःख को याद करता है, परन्तु भूतकाल में सिद्ध हुए, उन्हें याद कर तो सही, कहते हैं। आहाहा! छह महीने आठ समय में ६०८। अनन्त काल में कितने हुए ? आहाहा! अधिक हुए। आहाहा! छह महीने आठ समय और ६०८, आहाहा! ६०८, आहाहा! ऐसा करनेवाले गये हैं, हुए हैं। हो सकें, ऐसा नहीं—ऐसा नहीं। आहाहा! अशक्य हैं-ऐसा नहीं। कठिन है, परन्तु शक्य है और किया जा सकता है। करके अनन्त (जीव) सिद्ध हो गये हैं। आहाहा! चाहे जैसी दुष्कर बात करें, चाहे जैसे अनन्त भव किये। भले एक अन्तर्मुहूर्त में छियासठ हजार भव, ऐसे अनन्त बार किये, परन्तु वे सिद्ध हो गये। आहाहा! परमात्मा हुए हैं। जैसे तेरा आत्मा अस्तिरूप है; वैसे वे अनन्त अस्तिरूप विराजमान हैं। निगोद के सब भव का अभाव करके... आहाहा! यह कहा न यहाँ ?

तपोधन ही निश्चय शुभोपयोग भक्तिवाला है। वे जीव मुक्ति को प्राप्त करते हैं। बाकी बाह्य प्रपंचवाले सुख और मुक्ति को प्राप्त नहीं करते। आहाहा! आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त बाह्य कहीं भी किसी चीज़ में ठीक लगे, मजा लगे, कुछ विस्मय लगे, प्रेम लगे, उसमें तूने प्रभु का हनन कर दिया। आहाहा! दूसरे की अपेक्षा अधिक है, अत्यन्त भिन्न है, उसकी अपेक्षा इसे अधिक माना। आहाहा! जो नीच चीज़ है शरीर, वाणी, मन, पैसा, इज्जत, कीर्ति, इस नीच को तूने अधिक माना। यह ठीक है - ऐसा सुख माना और जिसमें सुख है, उसे छोड़ दिया। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बात है। ऐसा तो कहीं सुना भी नहीं होगा।

मुमुक्षु :- मुम्बई में इसकी दुकान नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- नहीं। आहाहा! अरे रे! कितने ही मश्करी करते हैं। निश्चय... निश्चय... निश्चय... प्रभु! निश्चय अर्थात् सत्य है। आहाहा! यह पर्याय भी वास्तव में असत्य है, नाशवान है। केवलज्ञान (पर्याय) को भी नाशवान कहा है। आहाहा! तीन लोक का नाथ अन्दर ध्रुवरूप से विराजता है, उसकी अपेक्षा से केवलज्ञान एकसमय मात्र (रहता है)। वह दूसरे समय नहीं रहता और यह तो त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल। संसार में भटका तो भी है, वह है। छूट जाए तो भी है, वह है - ध्रुव। आहाहा! अरे! उसमें कभी नजर की नहीं, विचार किया नहीं। आहाहा!

यहाँ तो (कहते हैं) **आत्मप्रयत्नसापेक्ष विशिष्ट जो मनोगति उसका ब्रह्म में संयोग होना...** आहाहा! **(-आत्मप्रयत्न की अपेक्षावाली विशेष प्रकार की चित्तपरिणति..)** देखा! परिणति को जोड़नी है। परिणति को आत्मा में जोड़ना। ध्रुव को जोड़ना नहीं। आहाहा! ध्रुव तो प्रभु सदा ध्रुव है। चाहे जो स्थिति हो, परन्तु वह तो चीज़ ध्रुव पड़ी ही है। सिद्ध होवे तो भी सिद्ध ध्रुव है। निगोद होवे तो भी ध्रुव है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं ऐसी **(-आत्मप्रयत्न की अपेक्षावाली विशेष प्रकार की चित्तपरिणति..)** ज्ञान की दशा, वर्तमान ज्ञान की, आनन्द की, शान्ति की दशा **(आत्मा में लगना)...** आहाहा! वर्तमान परिणति को आत्मा में जोड़ दे। वर्तमान परिणति को, अनादि से जो तुझमें नहीं, ऐसे राग और द्वेष, पुण्य-पाप में जोड़ी है। अब है, उसमें जोड़ दे। आहाहा! उसमें नहीं, उनमें जोड़ी है। अब उसमें है, उसमें जोड़ दे। आहाहा! आचार्यों की करुणा भी कितनी है। कैसी भाषा! सादी भाषा! आहाहा! कहीं कोई व्याकरण और संस्कृत न पढ़ा हो परन्तु चार पुस्तक पढ़ा हो... हमारे धरमचन्द कहते हैं कि चार पुस्तक पढ़ा हुआ भी समझे। आहाहा! इसमें पुस्तक का कहाँ काम है? मातुष-मारुष आता नहीं था। आहाहा! तो भी आत्मा आता था। 'शिवभूति'। आहाहा!

..... **(चित्तपरिणति का आत्मा में लगना) उसे योग कहा जाता है।** ये योग, वह मोक्ष का कारण है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)